

B.A.Law 4th Sem

विषय: हिंदी

ईकाई --4

व्याख्यान पाठ -- सड़क पर दौड़ते ईहा मृग

लेखक -- डॉ .श्याम सुंदर दुबे

व्याख्यान प्रस्तुति - डॉ वन्दना कुशवाह

लेखक परिचय

सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक लेखन के क्षेत्र में लोक-मानस के मर्मज्ञ लेखक डॉ. श्याम सुंदर दुबे एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। डॉ. श्याम सुंदर दुबे का जन्म वर्तलाई दमोह मध्यप्रदेश में 12 दिसम्बर, 1944 को हुआ।

कार्यक्षेत्र

ललित निबंध, कविता, कथा, उपन्यास, नवगीत, समीक्षा, आलोचना इनके अध्ययन एवं रचनाकर्म की प्रमुख विधाएँ हैं। डॉ. दुबे के लेखन में लोक-परंपरा अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक छवियों की अंतरंगता के साथ जुड़ी है। इनके ललित निबंधों और कविताओं में लोक का प्रांजल संसार बोलता है। सभी प्रमुख विधाओं में अब तक डॉ. दुबे की तीस पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने सर्जनात्मक कार्य पर अनेक शोध कार्य भी संपन्न हो चुके हैं।

सम्मान एवं पुरस्कार

डॉ. दुबे को उनके साहित्यिक अवदान के लिए मध्य प्रदेश साहित्य अकादेमी ने बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एवं आचार्य नंददुलारे वाजपेयी पुरस्कार से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त इन्हें अखिल भारतीय डॉ. शंभुनाथ सिंह नवगीत पुरस्कार, छत्तीसगढ़ का सृजन सम्मान एवं श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान प्राप्त है। डॉ. श्याम सुंदर दुबे को उनकी विशिष्ट साहित्यिक सेवाओं के लिए 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' के द्वारा सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

प्रस्तुत पाठ भौतिकता की पराकाष्ठा के दुष्प्रभाव की ओर ध्यान आकर्षित करता है।



ईहा का तात्पर्य है, इच्छा, आकांक्षा या तृष्णा। इस प्रकार ईहा मृग का आशय मृग तृष्णा से हैऐसी इच्छा जो कभी तृप्त नहीं होती संतुष्ट नहीं होती ...और और की वांक्षा कभी न खत्म होने वाली दौड़ का प्रतिभागी बना देती है। जिस प्रकार मरुस्थल में हिरन दूर कहीं पानी के आभास में निरन्तर दौड़ता रहता है किन्तु उसे कहीं भी जल नहीं मिलता, उसी प्रकार भौतिक लिप्साएं हैं....जिनका कहीं अंत नहीं है। इस भौतिकवाद की अंधी दौड़ में मनुष्यता कहीं पीछे रह गई है।



बाजार बंद की तुलना वर्तमान के लॉकडाउन से की जा सकती हैबंद में सड़कें सूनी हैं ...प्राकृतिक सौंदर्य निखर उठा है। लेखक कहता है कि सड़क को आज मैंने जी भर कर देखा फैली फैली लम्बी लम्बी सड़क अपने एकांत में गदबदाई सी थी। पंक्तिबद्ध खड़े अशोक वृक्षों के नीचे मनमगन..अपनी व्यस्ततम जिंदगी में या कहना चाहिए आपाधापी में कभी सड़क के इस सौन्दर्य की भव्यता का आभास ही नहीं हुआ। आशय यह है कि हम अपनी व्यस्तता के कारण आसपास की, अपने

बहुत निकट की खुशी को सौन्दर्य को अनुभूत ही नहीं कर पाते।



बंद का यह समय आत्ममंथन का है आत्मनिरीक्षण का है। लेखक कहता है कि बंद के बीच वह कई दिनों से भूली बिसरी अपनी प्रिय कविता को याद कर रही है।-जब इसके आजू-बाजू दुकानों का कोई बज्रुद नहीं था। लेखक का आशय है कि जैसे जैसे भौतिक विकास होता गया वैसे वैसे प्राकृतिक सौन्दर्य छूटा क्षीण होती गयी। साथ-साथ परस्पर आत्मीयता भी कम हुई जहाँ सड़को के माध्यम से लोग अपने आत्मीय, स्वजन नाते-रिश्तेदारों से मिलने जाते थे। रिश्तों में मिठास थी मानवता थी सब सुख दुःख के साथी थे। लोगों की आवश्यकताएं भी सीमित थी। लेकिन बढ़ते बाजार या कहिए बढ़ती भौतिकलिप्सा में ईहा मृग चौकड़ी भर रहे हैं सब कुछ पाने की चाह में जो भी उसके पास है उसे कम लग रहा है अपर्याप्त लग रहा है। निरन्तर नई नई वस्तुएं पाने की चाहत फिर कैसे भी प्राप्त करे.... अपराधिक प्रवृत्तियों की ओर विश्व को धकेल रही है। और उसी का परिणाम है कि तोप तमंचा से आगे बढ़कर जीवाणु हथियारों तक आ गए। इसी भौतिक विकास के लिए जो नए नए अनुसंधान हो रहे हैं वे प्राकृतिक संतुलन की अनदेखी कर रहे हैं। संसाधनों का अतिशय दोहन हो रहा है। वायु प्रदूषित हो रही है। जल फैक्ट्रियों के अपशिष्ट से विषाक्त हो रहा है। नदियां सूख रही हैं। अत्यधिक उत्पादन के लिए रासायनिक खाद की अधिकता से फसले पौष्टिक के स्थान पर जहरीली हो रही हैं। लेखक व्यथित होकर कहता है कि यह सब इसलिए हो रहा है कि बेतहाशा प्यास बढ़ रही है। अर्थात् ईहा और बढ़ रही है और जितनी इसकी पूर्ति की जा रही है यह उतनी ही तेजी से बढ़ती जा रही है, जैसे घी डालने से अग्नि और ज्यादा प्रज्वलित हो जाती है।



संसाधनों पर आधिपत्य करने के लिए होड़ लगी है क्योंकि यह शक्ति का आधार है। जिसके पास जितनी ताकत वह उतना ही दबंग। विश्व को अपनी शर्तों के अनुसार नचाने में समर्थ। अमेरिका का पेट्रोल उत्पादक देशों पर प्रतिबंध रख समूचे विश्व की अर्थव्यवस्था पर दबाव बनाना या चीन की विस्तारवादी नीति इसी भौतिकतावादी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है।



लेखक उपभोगवाद की तुलना एक प्राणघाती नशे से करता है जो न मरने देता है न जीने देता है। अर्थात् इस भोग वृत्ति को वह त्याग नहीं पा रहा है वह उसे मोहित किए हुए है और उसकी जितनी पूर्ति करता है तृष्णा उतनी ही अधिक बढ़ रही है। जैसे पहले प्राकृतिक बयार ही गर्मी से राहत दिलाने के लिए पर्याप्त थी.....फिर क्रमशः हाथ के पंखे, बिजली के पंखे, कूलर और अब एयरकंडीशनर भी कम हैं। झोपड़ी से लेकर बहुमंजिला अट्टालिका की उपलब्धि अपर्याप्त है। साइकिल मोटर साइकिल के बाद कार और अब चार्टर्ड प्लेन की चाहत व्याकुल कर रही है। अर्थात् महत्वाकांक्षाएं बढ़ रही हैं। व्यक्ति को लगता है कि इस आवश्यकता की पूर्ति के बाद सुखी हो जाऊंगा पर जैसे ही वह उस चीज को प्राप्त करता है तो पुनः नयी ईच्छा जाग्रत हो जाती है जो उसे चैन नहीं लेने देती। इसलिए ही इसे लेखक ने प्राणघाती नशा कहा है।



पहले मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति ही प्रमुख थी। अब इच्छा विकराल रूप धारण कर धरती आसमान सब निगलना चाहती है। गांव भी अछूते नहीं रहे, जो ग्रामीण गाहे-बगाहे नमक-मिर्च तेल जैसी जरूरत के लिए ही बाजार जाता था वो भी आए दिन डिपार्टमेंटल स्टोर में अनाप-शनाप खरीदारी कर रहा है। बाजार मनुष्य के भीतर घुस गया है। प्रतिक्षण दुकानों पर माल बदल रहा है जो कल नया था आज पुराना हो गया और आज खरीदा है वह कल रद्दी की टोकरी में जाएगा। इस तृष्णा का कोई अंत नहीं।



ऋणग्रस्तता बाजारवाद का दुष्परिणाम है । ट्रैक्टर मोटरसाइकिल फ्रिज टीवी आदि की किश्त चुकाता किसान अपने खेत बाजार में ही छोड़ आता है । अर्थात् खेत ऋण के कारण बिक जाते हैं ।



बाजार के चतुर खिलाड़ियों ने ग्रामीण परिवेश व संस्कृति की भी मार्केटिंग कर डाली । देहाती दुनिया को आलीशान होटल में अजूबे की तरह प्रस्तुत किया जाता है । 'लोक' को शहरियों के लिए मनोरंजन का साधन बना दिया गया है ।



अतृप्ति के संदर्भ में लेखक कहता है कि व्यंजनो का बाजार लगा है मीनू एक पूरी पोथी जैसा है और पेट तो पेट है । आकंठ (गले तक उसके बाद और खाने की गुंजाइश न हो) ठूसकर खा लेने पर भी सभी स्वादों को जीभ नहीं ले पाती तो मुह में अंगुली डालकर वमन कर फिर शेष व्यंजन ठूसने लगते हैं अर्थात् ये कभी तृप्त नहीं होते । बाजार इन्हें अघाने नहीं देता ।



एषणा (इच्छा / अभिलाषा / कामना / तृष्णा) ही सभी समस्याओं की मूल है । बढ़ती हुई अनन्त कामनाओं के कारण अनेकानेक विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं जैसे --

- अंधी प्रतिस्पर्धा
- नैतिक मूल्यों का क्षरण
- भोगवृत्ति की अतिशयता
- अपराधिक प्रवृत्तियों की वृद्धि
- अतृप्त अभिलाषा
- ऋणग्रस्तता
- संसाधनों पर आधिपत्य की होड़
- प्रेम सौहार्द और शान्ति का क्षरण
- वैश्विक युद्ध की स्थिति
- पर्यावरण प्रदूषण
- अवसाद निराशा क्रूरता की वृद्धि
- मानवता का हनन इत्यादि ।



विवेक इस उपभोगवादी जाल-आँसू शरीर के बूढ़े होने पर भी तृष्णा समाप्त नहीं होती यह तो केवल संयम से इन्द्रिय निग्रह से ही संभव है । संयम से ही विवेक जागृत रह सकता है । सत असत्, आवश्यक अनावश्यक, का ज्ञान विवेक द्वारा ही होता है । उपभोगवाद से बचने के लिए अपनी

सड़क पर दौड़ते ईहामृग

—डॉ. श्यामसुन्दर दुबे

आज बाजार बंद था। सड़क को आज मैंने जी-भर देखा। फैंली-फैंली लम्बी-लम्बी सड़क अपने एकांत में गदबदाई-सी थी। पंक्तिबद्ध खड़े अशोक वृक्षों के नीचे मगनमन इस सड़क पर उतरती छाया-प्रकाश की परछाइयों का कौतूहल दिन चढ़ते ही सूरज की उठान के साथ हज़ारहा डिज़ायनों में तब्दील होने लगा था। झरे पत्तों और फूलों की अल्पनाएँ रचाने में मशगूल यह सड़क अपने आसपास से एकदम बेखबर-सी थी। जो इक्के-दुक्के लोग इसे नाप रहे थे, वे भले ही जाने-पहचाने नहीं थे, किन्तु वे सड़क की इस सूनी भव्यता में आज बहुत आत्मीय से लग रहे थे। बोलने-बताने को आतुर वे सड़क के मौन को तोड़ना चाहते थे, किन्तु आज सड़क उनसे बोलने-बताने को तैयार नहीं थी। वह उन्हें अपनी अँकवार में भरकर भेंटना चाहती है। सड़क आज बहुत उत्कंठित है।

बंद के बीच आज वह कई दिनों से भूली-बिसरी अपनी प्रिय कविता को याद कर रही है। जिस कविता को यह याद करना चाहती है, वह कविता उस समय की है, जब इसके आजू-बाजू दुकानों का कोई वजूद नहीं था, जब इसके आसपास की ऋतुओं का निखालिस आवेग गुज़रता था और इस आवेग के साथ यह सड़क हो लेती थी—कभी गुलमोहर की लाली में हँसती-खिलखिलाती हुई, कभी हरसिंगार के छोटे-छोटे फूलों से चौक पूरती हुई, कभी नीम की पकी निंबोलियों की पियरी ओढ़े सकुचाती-शरमाती हुई और कभी धारासार वर्षा में आपाद-मस्तक भीगती-निचुड़ती हुई। समय बीतने के साथ ही इसकी कविता इसके हाथ से छूटती गई। भीड़-भाड़ की धकापेल में यह अकेली पड़ती गई। इसके दोनों ओर नक्शे खिंचे। फिर इन नक्शों में दीवारें उठीं। दीवारों में शो-केस घुसे और इनके बीच बैठ गया बाजार। बाजार ने सड़क को क्या-क्या नज़ारे नहीं दिखाए! जो सड़क पर हैं, वे सड़क पर नहीं हैं।

सड़क आकाश-पाताल एक कर रही है, पर सड़क दिखती नहीं है। लोग खोई सड़क पर दौड़ रहे हैं। रफ्तार ही रफ्तार है। ईहामृग चौकड़ी भर रहे हैं। सब-कुछ पाने की चाह में छल्लाँग लगाते मंसूबों में पूरी दुनिया सिमट आई है। बाजार की दुनिया में जो है, वह निरंतर 'औरे कछू' हो रहा है। इस 'औरे कछू' को पाने के लिए लोग हैं कि तोप-तमंचा से आगे बढ़कर जीवाणु हथियारों तक आ गए हैं। मिसाइल्स की कड़कड़ाहट उस आकाश के वक्ष को विदीर्ण कर रही है, जिसे मेघों की करकाएँ भी कंपित नहीं कर पाईं। उस हवा को सायनाइड गैस में बदल रही हैं, जिसको ज्वालामुखी का उत्ताप भी ताप नहीं दे पाया। आणविक अँगीठियाँ उस धरती के परखच्चे उड़ा रही हैं जो अपने असीम धैर्य के कारण धरा कहलाती है। जो जल जीवन का पर्याय है, उसमें घोला जा रहा है फ़ैक्टरियों का अपशिष्ट। नदियाँ बिलबिला रही हैं। मैल-मत्ता और दुर्गन्ध को धोने-पछोरनेवाली नदियाँ स्वयं डूब गई हैं, दलदल के दुस्सहनीय नरक में! आग जो अन्न को पकाती है, शीत को भेदती है और प्रकाश-ऊर्जा का जो स्रोत है, वह बिछ गई है सुरंग बनकर खेतों में, जहाँ अन्न की जगह मौत उगती है। विस्फोटक प्रकाश चीरता है झाड़ों-झुरमुटों, पंछी-पखेरुओं, ढोर-डॉंगरों के प्राणों को! हरा-भरा जीवन का उद्यान झुलस जाता है। यह सब इसलिए कि बेतहाशा प्यास बढ़ रही है— रूप की, रंग की, रस की, गंध और ध्वनि की प्यास! इस प्यास को बुझानेवाले सारे पदार्थ आहुति में घृत का कार्य कर रहे हैं।

तेल के कुओं से खींचा जा रहा है, पेट्रोल! जिसकी अंजुरी में जितना आ रहा है, उतना ही कम पड़ रहा है। जिनके पास ताकत है, जो प्रजातांत्रिक मूल्यों की कोतवाली कर रहे हैं, जिनके सामने विश्व की पंचायत सहमी हुई है, वे अपनी महाअंजुरी में समूची पृथ्वी का पेट्रोल भरकर समुद्रपायी अगस्त्य की मुद्रा में गटागट पी जाना चाहते हैं। पेट्रोल पर अधिकार हुआ तो संसार को मनचाहा नाच नचाया जा सकता है। संसार की मंडियों पर अपना एकाधिकार स्थापित किया जा सकता है। फिर, पृथ्वी पर भोग-तृष्णा से पीड़ित समस्त ईहामृगों को रेगिस्तानों मरीचिकाओं की डिलमिल परछाइयों में जलाभास के

देता हैं। भोग नहीं भोगे जाते, अपनी आयु ही भोगी जाती है - "भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णाः वयमेव जीर्णाः।" शरीर बूढ़ा होता जाता है, और तृष्णा जीवन। शरीर की सीमाएँ हैं। इसको रबड़ जैसा खींचा तो जा सकता है, किन्तु खींचने पर सीझता जाएगा। वियाग्रा की गोलियाँ कामज्वर के ताप की उत्थितावेशी पार्थिवता को उत्पन्न कर सकती हैं, लेकिन यह विषयज्वर मस्तिष्क की शिराएँ फाड़कर चिर बेहोशी में भी पटक सकता है। स्वाद-तृष्णाजन्य जमुहाई पर जब मुँह खुलता है, तब जीभ पर अंकित सरस्वती अपनी पूजापाटी लेकर महाभिनिष्क्रमण कर जाती है। जाते-जाते वह होंठों पर अपनी रवानगी की सील-सिक्का भी लगा जाती है। सरस्वती इस घोर भोगवादी युग में प्यास से पपड़ाए धरातल पर कैसे रह सकती है? सरस्वती तो तब थी जब जन्म लेते ही बच्चे की जीभ पर चंदन-चर्चित स्वर्ण-सीक से 'ओह् हीं श्रीं' अंकित कर दिया जाता था। मंत्र-विद्ध जीभ केवल सरस्वती के रस-प्रवाह का अजस्र निर्झर बन जाती थी। अपनी सम्पूर्ण लोलुपताओं को त्यागकर रचती रहती थी बैखरी के प्रतिकल्पी संसार, और कभी नहीं सूखती थी। स्वादेच्छाओं की तपिश में सरस्वती का गुजारा नहीं। वासना से भीगी जीभ पर से इधर सरस्वती उतरी और उधर धरती से सरस्वती नदी गायब हुई। अब उसे तलाशते रहो संगम के किसी कुंड में। कुंड में समाई सरस्वती को सब नहीं पा सकते। इसे वे ही पा सकते हैं, जिनकी जीभ पर अभी भी सरस्वती-मंत्र प्रतिष्ठित है। जीभ, मांसका एक असुंदर लोथड़ा है। यह सरस्वती के संसर्ग से सुंदर बनती है। अन्यथा, दो अंगुल की इसकी लम्बाई-चौड़ाई में संसार को चबाकर अपार स्वाद लेने की महाक्षमता है।

मैं गाँव का आदमी हूँ। कभी-कभार महानगरों के माया-महलों की यात्रा कर लेता हूँ। मैं इन यात्राओं में अपनी लटी-दूबरी देहाती दुनिया की पोटली काँख में दबाए रहता हूँ। इस अजूबे को प्रदर्शित करने के लिए मेरे मित्रगण मुझे आलीशान होटल में ले जाते हैं। मेरा 'लोक' उनका मनोरंजन करता है। इस रमणीक द्वीप के अतिथियों की मोनोटोनस लाइफ में इससे बदलाव-भरी नई स्फूर्ति आती। वे मुझसे 'लोक' पर बतियाते हैं, मुझसे लोकगीत सुनते हैं, और बेशर्मी से ठूस-ठूसकर खाते हैं। वे मानते हैं कि लोकगीत देशी ठर्रा है, इसके स्वाद से पेट का हाजमा ठीक हो जाता है। व्यंजनों का बाजार आकंठ ठूसकर खा

परदों के भीतर चलते आदमी का अता-पता नहीं चलता - कब, कैसे, कहाँ भस्मी भूत हुआ ? एक महाविकराल मुख की पैनी दंष्ट्रा में खून-ही-खून लगा है। वह तलाश रही है, नए-नए आखेट-स्थल। गाँवों में उसकी मटरगश्ती चल रही है। मसूर, सोयाबीन, कपास की फसल में बढ़ोतरी हुई तो गाँव-के-गाँव उस मुख में समा रहे हैं। 'लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः'- वह समस्त लोकों को चाट रहा है-लील रहा है। गाँव में वह घुसा सो गाँव चौपट-चर्पट हुए। गाँव की चर्पट पंजरिका उसके लोकगीतों में गूँजने लगी। मेरी तरफ एक लोकगीत खूब प्रचलित है। "सैयाँ लै दे कर- धनिया। मंगाई है करधनिया। मैं तोसों बिरजी।" घरवाली को चाहिए अस्सी तोले की करधनी! वह मानवती है, बिरजी है। कोपभवन में सिंगार-पटार फेंककर ऐंठी बैठी है। सैयाँ ने उसकी ऐंठ एक ही वाक्य में तोड़ दी- "मसूर को बिकने दो। मैं तुझे करधनी के साथ हार भी पहना दूँगा।" मसूर और सोयाबीन से लहलहाते खेत केवल पटवारी की खसरा-खतौनी में खेतिहर किसान के नाम हैं। इनके दाने तो बाजार में गिरवी रखे हैं।

मुझे एक संवाद याद आ रहा है। पहलौटी विदाई में एक किसान अपनी पुत्रवधू को मायके से ससुराल विदा करके ले-आ रहा था। रास्ते में जो खेत पड़ते थे वे उस किसान के थे। वह बहू को गर्वपूर्ण लहजे में बता रहा था, "बेटी देखो, यह अपना खेत है।" फिर, और आगे बढ़कर उसने कहा, "देखो बेटी! वह जो मसूर के फूलों से गन्धा रहा है, वह भी अपना ही खेत है।" बहू भी मायके से गुण सीखकर आई थी। दाई से पेट तो छिपा नहीं रहता। जो किसानी उसके मायके में, सो किसानी ससुराल में! उसने श्वसुर की हेकड़ी तोड़ते हुए पूछ लिया, "इन खेतों में से आपका असली खेत कौन-सा है?" श्वसुर, बहू के प्रतिप्रश्न से अचकचा गया- "क्या मतलब ? ये सब खेत मेरे असली खेत हैं!" बहू बोली-"मैं यह जानना चाहती हूँ कि शहर के साहूकार के यहाँ जो खेत गिरवी न रखा हो, वह कौन-सा खेत है ?" किसान की बोलती बंद हो गई। खेत तो सभी गिरवी रखे थे। प्रेमचंद के गोदान का होरी, बाजार की इस किसान खोरु नीयत का जीता-जागता व्यक्ति-बिम्ब है। किसान का यह व्यक्ति-बिम्ब सूदखोरी के चौखटे में अब भी ज्यों-का-त्यों फिट है। ऋणग्रस्तता के केवल कारक बदले हैं। अब किसान ऋण लेने के अज्ञाना चीजें वापरता है। ट्रेक्टर, मोटरसायकिल, फ्रिज, टी.वी. की किशतें चुकाता

202 □ हिंदी भाषा संरचना-2

सड़क जो गाँव तक पहुँचती थी— विकास के लिए, उसने गाँव में बाजार बैठा दिया है। टी.वी. आकाश मार्ग से पंच-इन्द्रियों की भूख बढ़ाने के विज्ञापनों का पंचतंत्र रच रहा है। वह जो गाँव का आदमी छठे-छै मासे बाजार की सड़क पर आता था— नमक, तेल, गुड़ और कपड़ा—लत्ता खरीदने, अब वह भी ईहामृग बना डिपार्टमेंटल स्टोरों में घुस रहा है। जो उसे टी.वी. दिखाता है — उसको भर रहा है क्रयपात्र ट्रॉलियों में। वह रोज इस सड़क पर होता है, जो अव्यक्त भीड़ बनी गहमागहमी पालती है। आज बाजार बंद है तो सड़क सुखी दिख रही है। काश! सड़क पर बाजार न होता! यह समूचा संसार ही बाजार है, तो बाजार से सड़क कैसे बचेगी? “यह दुनिया बाजार है, मोदी है भगवान। जाकी जैसी हैसियत, तोल देत सामान।” बाजार का रूपक संतों के काम भी आया है अपने चौहट्ट हाट में उन्होंने बाजार की सड़कों का नक्शा खींचा है। बाजार बंद और सड़क सूनी है। सड़क का सूनापन भीड़ की स्मृतियों का स्वैरालाप है।